2 नवम्बर 2014, कुल पृष्ठ : 8, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-32 / 2012-14

जैन
पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के व्याख्यान प्रतिदिन अब आधे घंटे
जी-जागरण पर
प्रतिदिन प्रातः
6.30 से 7.00 बजे तक

वर्ष : 37, अंक : 15 सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** आजीवन शुल्क : 251 रुपये
नवम्बर (प्रथम), 2014 (वीर नि. संवत्-2540) सह-सम्पादक : **डॉ. संजीवकुमार गोधा व पण्डित परमात्मप्रकाश भारिल्ल** वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

भ.महावीर निर्वाणोत्सव सानंद संपन्न

देवलाली-नासिक (महा.) : यहाँ भगवान महावीर निर्वाणोत्सव के अवसर पर दिनांक 20 से 24 अक्टूबर तक 170 तीर्थंकर मंडल विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा समयसार कलश 271-278 पर प्रवचन हुये। इसके साथ ही समयसार पर धारावाही प्रवचनों का यहाँ समापन हुआ। समयसार के बंध अधिकार तक हुये प्रवचनों के 8-8 वीडियो प्रवचन वाली 47 वी.सी.डी. के 100 सेट अर्थात् 37 हजार 600 घंटों के वीडियो प्रवचन कतिपय मुमुक्षु भाईयों की ओर से सभी साधर्मियों को नि:शुल्क प्रदान किये गये। इसके अतिरिक्त ब्र. हेमचंदजी 'हेम' देवलाली एवं पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली के प्रवचनों का भी लाभ मिला।

विधि-विधान के समस्त कार्य ब्र. अभिनन्दनजी शास्त्री खनियांधाना, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, पण्डित दीपकजी जैन भोपाल एवं ब्र. अमृतभाई देवलाली द्वारा संपन्न हुये।

वीर निर्वाण की पूर्व संध्या पर, अ.भा.जैन युवा फैडरेशन के सदस्यों से-

एक आह्वान

- परमात्मप्रकाश भारिल्ल
(महामंत्री, अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन)

अन्तिम दर्शन आज किए हैं, अब कल दर्शन ना होंगे
हे वीर प्रभु अब तो हमको, अपने दर्शन करने होंगे
दिव्यध्वनि का श्रवण किया, और श्रवण अब ना होंगे
मनन, चिन्तवन और अनुभवन, अब अपने साधन होंगे
तीन लोक के नाथ मिले थे, अब उनके दर्शन ना होंगे
निर्ग्रन्थ दिगम्बर गुरु हमारे, अब आगे सम्बल होंगे
निज में बसते निर्ग्रन्थों के, गिरि वन ही आँगन होंगे
कैसे संभव प्रतिदिन-प्रतिपल, उनके भी समागम होंगे
जिनवाणी के पठन चिंतवन, में प्रवृत जन गण होंगे
आत्मोन्नति का साधन अब बस, आत्म चिन्तवन होंगे
आओ हम मिल स्वाध्याय की, परम्परा को विकसायें
संसार मार्ग पर दौड़ छोड़कर, मुक्ति पथ पर लग जाएँ

आध्यात्मिक शिक्षण शिविर सानंद संपन्न

मंगलायतन-अलीगढ (उ.प्र.) : यहाँ भगवान महावीर निर्वाणोत्सव के अवसर पर दिनांक 22 से 28 अक्टूबर तक आध्यात्मिक शिक्षण शिविर एवं पंचमेरु नंदीश्वर मण्डल विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के छहढाला पर सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त पण्डित ज्ञानचंदजी सोनागिर द्वारा छहढाला व मोक्षमार्गप्रकाशक, पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी आगरा द्वारा समयसार, पण्डित देवेन्द्रकुमारजी मंगलायतन द्वारा समयसार एवं डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर द्वारा शंका-समाधान, परमभाव प्रकाशक नयचक्र तथा रात्रि में पंचमेरु-नंदीश्वर का स्वरूप, पण्डित संजयजी शास्त्री मंगलायतन द्वारा समाधिमरण का स्वरूप एवं पण्डित सचिनजी जैन द्वारा मोक्षमार्गप्रकाशक विषय पर प्रवचनों एवं कक्षाओं का लाभ मिला।

सायंकाल जिनेन्द्र भक्ति के अतिरिक्त रात्रि में प्रवचनोपरान्त सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन हुआ। इस अवसर पर गुरुदेवश्री के वीडियो प्रवचनों की प्रस्तुति **मंगल वाणी** एवं गुरुदेवश्री के जीवन परिचय पर आधारित **कहान क्रमबद्धकथा** नामक डी.वी.डी. सेट का विमोचन किया गया।

शिविर में उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार, गोहाटी-असम आदि अनेक स्थानों से सैंकड़ों साधर्मियों ने पधाकर धर्मलाभ लिया। कार्यक्रम में दिनांक 1 से 6 अप्रैल 2015 को विदिशा में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर एवं तीर्थधाम मंगलायतन के संयुक्त तत्त्वावधान में होने वाले पंचकल्याणक का आमंत्रण पण्डित ज्ञानचंदजी विदिशा एवं श्री प्रमोदजी जैन द्वारा दिया गया। विधान के आयोजनकर्त्ता श्री धर्मचन्द लक्ष्मीचंद एवं महेन्द्रकुमारजी छाबड़ा परिवार सीकर थे।

विधि-विधान के समस्त कार्य पण्डित संजयजी शास्त्री मंगलायतन, श्री सुबोधजी जैन ग्वालियर एवं मंगलार्थी छात्रों द्वारा भक्तिभावपूर्वक संपन्न हुये।

'मोना' द्वारा विशेष शिविर संपन्न

देवलाली-नासिक (महा.) : यहाँ भगवान महावीर निर्वाणोत्सव के उपरान्त दिनांक 25 से 29 अक्टूबर तक मुमुक्षु ऑफ नॉर्थ अमेरिका (मोना) द्वारा विशेष शिविर का आयोजन किया गया। इस शिविर में 'भेदविज्ञानत: सिद्धा:' विषय पर अनेक वक्ताओं द्वारा अपना चिन्तन प्रस्तुत किया गया।

इस अवसर पर तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा मार्गदर्शन स्वरूप उद्बोधन हुआ। इसके अतिरिक्त डॉ. उत्तमचंदजी सिवनी, ब्र. हेमचंदजी 'हेम' देवलाली, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, डॉ. राकेशजी शास्त्री नागपुर, श्री भरतभाई सेठ राजकोट, श्री चेतनभाई राजकोट आदि के वक्तव्य का लाभ मिला।

सम्पादकीय –

क्या मुक्ति का मार्ग इतना सहज है ?

– पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे...)

कर्मकिशोर ने कहा – ''जीवराज! तुमसे यह सब सुनकर मैं – असमंजस में पड़ गया हूँ। तुम्हारा–हमारा अनादि का साथ था। लगता है कि अब वह साथ शीघ्र ही छूटने वाला है। इतना दीर्घकालीन साथ छूटने का गम होना तो स्वाभाविक ही है, परन्तु तुम्हें निराकुल सुख की प्राप्ति होगी। संसार के दुःखों से सदा–सदा के लिए मुक्त हो जाओगे। अनन्तगुण प्रगट हो जायेंगे, सर्वज्ञता प्रगट होने से लोकालोक को एक साथ जानने की सामर्थ्य प्रगट हो जायेगी, परमात्मा बनकर जगत पूज्य हो जाओगे – इसका भारी हर्ष है।

हमारा क्या? हमें तो अनन्त जीवों का साथ सदा बना ही रहता है। हम तुम्हें सहर्ष विदाई देगें। तुम्हारे कल्याणकों के जोर–शोर से महोत्सव मनायेंगे। अब तुम जब तक संसार में रहोगे, यहाँ भी तुम्हारी सेवा में तत्पर रहकर तुम्हें संसार के एक से बढ़कर एक सुखद संयोग जुटायेंगे। हमें ऐसा मौका कहाँ मिलता है। बहुत कम जीव ऐसा सम्यक् पुरुषार्थ करते हैं। अधिकांश तो चौरासी लाख योनियों में ही जनम–मरण करते रहते हैं। धन्य है तुम्हें और तुम्हारी पत्नी समताश्री को, जिन्होंने मुक्तिमहल के नींव का शिलान्यास करने का संकल्प कर लिया है।''

जीवराज ने कर्मकिशोर से अपनी प्रशंसा सुनकर कहा – ''भैया! यह तो तुम्हारा बढ़प्पन है, जो हमारे बारे में ऐसा कहते हो। हमने ऐसा किया ही क्या है? बस, मात्र अपनी शक्ति को ही तो जाना–पहचाना है। देखो तो सही! राई की ओट में पहाड़ था। मेरी समझ में अब आ रहा है कि **'मुक्ति का मार्ग कितना सरल है, कितना सहज है? वस्तुतः मुक्त होने के लिए बाहर में तो कुछ नहीं करना है। पर में कुछ भी करने में तो धर्म है ही नहीं। पर से तो मात्र हटना है और स्व में मात्र डटना है, मात्र इतना सा काम करना है। 'पर से खस, स्व में बस, आयेगा अतीन्द्रिय आनन्द का रस, इतना कर तो बस' अर्थात् धर्म प्राप्त करने के लिए इतना सा काम करना ही पर्याप्त है।**

आज तक यह नहीं जाना था, इस कारण यह सब झमेला था। खैर! जो होना था, वही हुआ, इसका भी क्या विकल्प करना।

कर्मकिशोर ने अन्तिम प्रश्न का स्मरण करते हुए जीवराज से कहा – ''अभी तक तो सब बातों–बातों में हुआ। अब तुम यह बताओ कि तुम इन सुनहरे स्वप्नों को साकार कैसे करोगे? मुक्ति का महल बनाने के लिए तुम्हारे पास ठोस आधार क्या है? तुम्हारी भावी योजना क्या है? और मैं तुम्हारे किस काम आ सकता हूँ? मैं तुम्हारे विचारों से प्रसन्न हूँ, सहमत भी हूँ तथा मैं तुम्हारे इस काम में सहयोग भी करना चाहता हूँ? तुम मुझे मात्र अपना शत्रु ही मत समझो। मैं मुक्ति के मार्ग को प्रशस्त करने में सहयोगी की भूमिका भी निभाता रहा हूँ।

भगवान के भक्त तो भगवान के सामने ही मेरे सहयोग की दिल खोलकर प्रशंसा करते हैं। वे कहते हैं –

'अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया'

यदि मैं पापियों को दुर्गति में ले जाकर दण्डित करता हूँ तो धर्मात्माओं को आत्मकल्याण के निमित्तभूत देव–शास्त्र–गुरु का सान्निध्य भी प्राप्त करता हूँ अतः जहाँ तुम्हें मेरे सहयोग की जरूरत महसूस हो, मैं तुम्हारा सहयोग करने को तत्पर हूँ।

जीवराज ने कर्मकिशोर को सहयोग करने की भावना का आदर करते हुए अपनी भावी योजनाओं की रूपरेखा बताते हुए कहा – ''यद्यपि धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है, यह मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी है; परन्तु सीढ़ी के पूर्व नींव के पत्थर का शिलान्यास करना आवश्यक है, जो कि **'वस्तुस्वातंत्र्य'** का सिद्धान्त है। नींव के पत्थर की पहचान या परिचय के लिए सर्वप्रथम वीतरागी देव, निर्ग्रन्थ गुरु और अनेकान्तमयी धर्म की यथार्थ श्रद्धा आवश्यक है। इनकी यथार्थ श्रद्धा के लिए पहले देव–शास्त्र–गुरु का यथार्थ स्वरूप जानना आवश्यक है; क्योंकि इनके जाने बिना श्रद्धान किसका करें। इन्हें जानने के लिए व्यवस्थित बुद्धि होना जरूरी है।

इन सबके लिए दुर्व्यसनों का त्याग अनिवार्य है। अतः सर्वप्रथम हमें बुद्धिपूर्वक सात व्यसनों का त्याग, अष्ट मूलगुणों का धारण, नित्य देव–दर्शन, नियमित स्वाध्याय और अहिंसक आचरण करना आवश्यक है।''

जीवराज ने कहा – ''यद्यपि ये क्रियायें धर्म नहीं है, मुक्ति महल के नींव के पत्थर नहीं हैं। कर्मकिशोर! इन सबसे तुम्हारा परिवार ही बढ़ेगा – यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ, परन्तु मैं तुम्हारे परिवार की प्रकृति को अब अच्छी तरह पहचानने लगा हूँ। उन सबका काम तो जो/जैसा मैं अपनी स्वयं की योग्यता से करता हूँ

अथवा जैसा जीव भला–बुरा अपने हिताहित के काम करता है, उसमें अनुकूल–प्रतिकूल निमित्त बन जाना तेरे परिवार की प्रकृति है। अतः यदि मैं धर्माचरण रूप कार्य करूँगा तो तेरा परिवार मुझे उसमें भी अनुकूल बाह्य संयोग मिलाने में निमित्त बनेगा।''

यह समझाकर जीवराज ने कर्मकिशोर को अपनी भावी योजना में धर्माचरण को न केवल प्राथमिक आवश्यकता बताया बल्कि धर्माचरण करने की आद्योपान्त रूपरेखा भी बताई। धर्माचरण में **सामूहिक स्वाध्याय कर सर्वाधिक समय देने का संकल्प किया; क्योंकि स्वाध्याय के द्वारा ही तो मुक्तिमहल की नींव के पत्थर का शिलान्यास संभव हो सकेगा।**

जीवराज ने कर्मकिशोर के अन्तिम प्रश्न वेदनाजनित भय और आर्तध्यान से किस प्रकार बचने के इस अन्तिम प्रश्न के उत्तर में कहा कि – ''जब मुझे शारीरिक रोग के कारण असह्य वेदना होती है तब मैं सोचता हूँ – 'भगवान आत्मा तो आधि–व्याधि जनित पीड़ा से सर्वथा पृथक ही है तथा आत्मा राग व रोग दोनों से भी पृथक ही है। इसकारण वेदना होते हुए भी वेदना जनित भय नहीं होता और शरीर तो व्याधि का ही मन्दिर है, रोगों का ही घर है। इसके एक–एक रोम में ९६–९६ रोग हैं। इस कारण रोगों से बचने का तो एकमात्र उपाय देहातीत होना है। जब तक संसार में जन्म–मरण है तब तक कोई भी इन व्याधियों से नहीं बच सकता।

राजा श्रीपाल और चक्रवर्ती सनतकुमार जैसे पुण्य पुरुष कोढ़ से पीड़ित रहे तद्भव मोक्षगामी उपसर्गजयी मुनि पुंगव सुकमाल, सुकौशल का आत्म साधना की दशा में सियाल और शेरनी ने खाया। उन सब पुण्य पुरुषों की अपेक्षा हमें क्या दुःख है? कुछ भी नहीं। यही सब सोचकर समता रखता था।

यह भी विचार आता था कि यह तो क्षणिक पर्याय है, एक क्षण में पलटेगी और पीड़ा कम हो जायेगी। इस आशा में वह पीड़ा सह लेता था। अधिकांश तो उस पीड़ा पर से उपयोग हटाने हेतु देहातीत भगवान की भक्ति के गीत गुन–गुनाता रहता, स्तोत्र स्तुतियाँ पढ़ा करता। सिद्ध भगवन्तों की पूजा–पाठ किया करता। यद्यपि वेदना से बचने का सबसे सशक्त साधन स्वाध्याय है, परन्तु वह समता के द्वारा संचालित सामूहिक स्वाध्याय में तो सम्मलित नहीं हो पाता; फिर भी उनके कैसिट सुनकर साम्य भाव से समय का सदुपयोग करता।

बस इसी तरह धीरे–धीरे रोग क्षय होता गया, साथ ही राग भी क्षीण होता रहा और अब ऐसा महशूस करने लगा कि – ''मैं पूर्ण तन्दुरुस्त और श्रद्धा से पूर्ण स्वस्थ हूँ।'' चारित्रगुण में विशुद्धि की कमी के कारण अभी मुनिश्री सुकुमाल और मुनिश्री सुकौशल की श्रेणी में नहीं आ पा रहा हूँ; परन्तु भावना यही है कि –

कब धन्य सुअवसर पाऊँ जब निज में ही रम जाऊँ

तथा प्रतीक्षा है कि – 'वह धन्य घड़ी कब आयेंगी, जब मैं मुनिराज बनके वन में विचरूँगा।

जीवराज के इस प्रकार के उत्तम विचारों से कर्मकिशोर न केवल प्रभावित ही हुआ, बल्कि उसकी आँखे भी आसुओं में भीग गई। उसने धन्यवाद देते हुए आंसुओं की बूँदों से उसके चरणों का प्रक्षाल किया और श्रद्धाभक्ति से नमन कर जीवराज को आश्वस्त किया कि जब तक आप इस संसार में है, हमारी पुण्य की पार्टी आपकी सेवा में सदा समर्पित हैं, आप हमें सेवा का अवसर प्रदान करते रहें। हमारी पार्टी आपके अनुकूल सुखद संयोगों को मिलाती ही रहेगी।

इसप्रकार जीवराज और कर्मकिशोर के सुखद–संवाद के साथ बात पूरी हुई।

अधिकांश धर्मप्रेमी इतने शुभकार्य तो अनेक बार कर चुके; फिर भी अब तक उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ा; क्योंकि उनकी भूल यह होती है कि वे इस प्राथमिक पृष्ठभूमि को ही धर्म की क्रिया मानकर संतुष्ट हो जाते हैं।

उदाहरणार्थ जैसे कोई कृषक खेत को जोतें, उसकी घास उखाड़े, खाद–पानी डालें, चारों ओर बाढ़ लगाये। इसतरह खेत को बीज बोने योग्य बनाकर भी उसमें बीज डालना भूल जाये तो क्या उसे समय पर फसल (अनाज) की प्राप्ति होगी? ठीक उसी प्रकार जीव प्राथमिक सभी धर्माचरण करे और स्वाध्याय से प्राप्त होने योग्य वस्तुस्वातंत्र्य के सिद्धान्त को न समझे। नींव के पत्थर का शिलान्यास ही न करे तो मुक्ति का महल किसके आधार पर खड़ा करेगा?

वस्तुस्वातंत्र्य का सिद्धान्त एवं उसके पोषक कारण–कार्य, चार अभाव, पाँच समवाय, षट्कारक आदि ही तो वे आधार शिलायें हैं, जिसपर मोक्षमहल का निर्माण होता है। अतः इन सबको जानकर श्रद्धान करना एवं तदनुकूल धर्माचरण करना ही तो धर्म का मूल है। इनकी यथार्थ प्रतीति से उपयोग की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी होने लगेगी, फिर हम समस्त कर्तृत्व के भार से निर्भार हो जायेंगे।

(शेष पृष्ठ 5 पर ...)

वाह रे वस्तुस्वरूप !

– परमात्मप्रकाश भारिल्ल

''ज्ञानी के भोग भोगते हुए भी कर्मबंध नहीं होता है और वही भोग भोगते हुए अज्ञानी कर्म बांधता है''

आखिर क्यों ?

क्योंकि ज्ञानी के पास बंधक तत्त्व (bonding material) नहीं है न ?

कर्म का बंध मोह-राग-द्वेष से होता है और ज्ञानी के वे हैं नहीं; तो बंध कहाँ से हो ?

(यहाँ अनंतानुबंधी की अपेक्षा से बात है, 3 कषाय { अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन } के सद्भाव संबंधी रागांश की विद्यमानता से तत्संबंधी बंध भी है, पर अनंतानुबंधी की अपेक्षा से नगण्य; क्षीण बंध होने से उसे अबंध ही कहा है)

ऐसा भी नहीं है कि कर्मोदय जनित अनुकूल या प्रतिकूल संयोग में अनुकूलता और प्रतिकूलता का वेदन ज्ञानी को नहीं होता हो, साता वेदनीय के उदय में अनुकूलता का और असाता वेदनीय के उदय में प्रतिकूलता का वेदन भी उसे होता ही है, फर्क यह है कि **वह उसका ज्ञाता-दृष्टा बनता है, कर्त्ता-भोक्ता नहीं।**

आपकी क्या प्रतिक्रिया है उक्त तथ्य के बारे में ? क्या आप सहमत हैं; या असहमत हैं ?

कहीं आपको वस्तुस्वरूप का यह व्यवहार त्रुटिपूर्ण या अन्यायपूर्ण तो नहीं लगता है ?

क्या आपको इसके मायने पता हैं ?

चलिए जरा विस्तारपूर्वक इस तथ्य की व्याख्या करते हैं -

चक्रवर्ती भरत; क्षायिक सम्यग्दृष्टि, तद्भव मोक्षगामी।

साठ हजार वर्ष के लिए युद्ध करने को निकलता है, छह खंड का अधिपति बनता है, 96000 विवाह करता है, 60000 पुत्रों को जन्म देता है और केवलज्ञान होने से मात्र कुछ ही घंटों पूर्व तक छह खंडों के शासन सूत्रों का संचालन करता है।

कहते हैं कि यह सब करते हुए उसे कर्मों का बंध नहीं है, निर्जरा है।

क्या आप जानते हैं कि यदि चक्रवर्ती शासन करते हुए देह त्यागे (मृत्यु को प्राप्त हो) तो नियम से सातवें नरक को जाता है, उसके ऐसे तीव्र कषाय रूप परिणाम होते हैं और यहाँ कहते हैं कि छह खंड पर शासन करते हुए तथा तत्संबंधी भोग भोगते हुए भरत को आस्रव-बंध नहीं था, संवर और निर्जरा थी।

दूसरी ओर हम जैसे दरिद्री, जिनके पास भोगने को है ही क्या? बस अभाव ! अभाव !! अभाव !!!

हमें निरंतर बंध होता है, अनंत गुना बंध होता है; क्यों ?

क्या यह अन्याय और अनीति नहीं ? अत्याचार नहीं ?

क्या वस्तुस्वरूप में अन्याय, अनीति और अत्याचार होना संभव है ?

तब यह क्या है ?

हाँ ! यही वस्तुस्वरूप का न्याय है।

ज्ञानी (चक्रवर्ती भरत) उक्त सब संयोगों के बीच रहता हुआ उनका कर्त्ता-धर्त्ता नहीं बनता है, उनमें राग-द्वेष नहीं करता है, साता-असाता वेदनीय कर्मों के उदय के फलस्वरूप **उसे जिन अनुकूलताओं या प्रतिकूलताओं का वेदन होता है वह उनका मात्र ज्ञाता-दृष्टा रहता है; और कर्मों का बंध राग-द्वेष से होता है, ज्ञान से नहीं।**

बस यही अंतर है हममें और चक्रवर्ती भरत की परिणति में, हमने अपने अकर्त्ता और ज्ञाता-दृष्टा स्वरूप को नहीं जाना, स्वीकार नहीं किया और हम परद्रव्यों के परिणमन का कर्त्ता अपने आप को मानते रहते हैं (यानि बने रहते हैं), उनके परिणमन में राग और द्वेष करते रहते हैं इसीलिए हमें निरंतर बंध (अनंतानुबंधी संबंधी) होता रहता है, भरत (सम्यग्दृष्टि) उन सबके बीच रहते हुए भी परपदार्थों के परिणमन का मात्र ज्ञाता-दृष्टा बना रहता है, उनमें राग-द्वेष नहीं करता है इसलिए उसे बंध नहीं होता है, निर्जरा होती है।

अरे भाई ! **बाह्य संयोगों से अंतरंग परिणति का माप नहीं हो सकता है।**

मैं और अनन्तानंत परपदार्थ इसी लोकाकाश में तो हैं, सभी आकाश के एक ही प्रदेश में रहते हुए भी संयोग नहीं कहलाते हैं, हमारा राग-द्वेष इन्हें संयोग बनाता है, राग-द्वेष के कारण हम इनके साथ इष्ट-अनिष्ट का संबंध स्थापित करते हैं, जिससे कर्मबंध होता है।

उक्त परपदार्थों के और उनसे सर्वथा भिन्न अपने भगवान आत्मा के हम ज्ञाता-दृष्टा बनें, उनमें इष्ट-अनिष्ट बुद्धि का संबंध स्थापित न करें तो हम भी निर्बंध हो जायेंगे, यही वस्तुस्वरूप का न्याय है।

युवा संस्कार शिविर संपन्न

सिद्धायतन–द्रोणगिरि (म.प्र.) : यहाँ श्री गुरुदत्त कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के तत्त्वावधान में भगवान महावीर निर्वाणोत्सव के पश्चात् दिनांक 26 से 28 अक्टूबर तक युवा संस्कार शिविर का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर ब्र. रवीन्द्रजी 'आत्मन्' अमायन द्वारा प्रात: समयसार व दोपहर में रत्नकरण्ड श्रावकाचार पर आध्यात्मिक प्रवचनों का लाभ मिला। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक विद्वानों के प्रवचन एवं गोष्ठी के माध्यम से लाभ मिला। रात्रि में प्रवचनोपरान्त सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन हुआ।

शिविर में प्रात:काल नित्यनियम पूजन एवं सायंकाल जिनेन्द्र–भक्ति का भी आयोजन किया गया। उद्घाटन सभा में ध्वजारोहण श्री धनपालजी ज्ञायक बांसवाड़ा द्वारा हुआ।

कार्यक्रम में बुन्देलखण्ड में हुए ग्रुप शिविर का समापन समारोह भी रखा गया। संपूर्ण कार्यक्रम में देशभर से लगभग 250 साधर्मियों ने उपस्थित होकर धर्मलाभ लिया।

(पृष्ठ 3 का शेष...)

वस्तुतः यह धर्माचरण साधन है, साध्य नहीं है। साध्य तो एकमात्र शुद्धात्मा, कारण परमात्मा है, एतदर्थ मुक्तिमहल के नींव के पत्थर वस्तु स्वातंत्र्य का यथार्थ ज्ञान–श्रद्धान होना हमारी प्राथमिक आवश्यकता है। उसकी प्राप्ति हेतु जो भी त्याग करना होगा हम करेंगे और इस जीवन में मुक्ति महल का शिलान्यास करके ही दम लेंगे।

समता जीवराज की अपेक्षा धर्म के क्षेत्र में बहुत आगे है, उसे बचपन से ही धार्मिक संस्कार मिले हैं। उसने नियमित सामूहिक स्वाध्याय में सम्मलित होकर खूब तत्त्वाभ्यास किया है। अतः वह अपने विचारों में सदैव दृढ़ रही है। इतना होते हुए भी उसे अपने ज्ञान का किंचित् भी गुमान नहीं है। वह मधुरभासी तो है ही, लोक व्यवहार में भी चतुर है। अपने से बड़े सम्माननीय पति, सास, श्वसुर आदि पारिवारिक जनों की मान–मर्यादा का भी पूरी तरह ध्यान रखती है।

जीवराज को धर्मज्ञान की शिक्षा अपनी धर्मपत्नी समता से ही मिली है, अतः उसे अपनी पत्नी को भी गुरु का दर्जा देने में, गुरु का आदर देने में जरा भी संकोच नहीं है। वह इस विषय में बहुत खुले विचारों का व्यक्ति है। अतः समता और जीवराज एक–दूसरे को खूब सम्मान देते हैं। एक दूसरे के साथ विचार–विमर्श करके धर्मप्रचार की नई–नई योजनायें बनाते हैं। ●

साप्ताहिक गोष्ठियाँ संपन्न

जयपुर (राज) : यहाँ टोडरमल स्मारक भवन में साप्ताहिक गोष्ठियों की श्रृंखला में दिनांक 2 अक्टूबर को **'क्रमबद्धपर्याय : एक अनुशीलन'** विषय पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया।

इस गोष्ठी की अध्यक्षता पण्डित संजयजी सेठी जयपुर ने की।

श्रेष्ठ वक्ता के रूप में शुभांशु जैन (उपाध्याय वरिष्ठ) एवं विकास जैन (शास्त्री द्वितीय वर्ष) रहे। मंगलाचरण सौमिल जैन (उपाध्याय कनिष्ठ) ने किया।

गोष्ठी का संचालन अमोल महाजन एवं संदेश जैन (शास्त्री तृतीय वर्ष) ने किया।

दिनांक 4 अक्टूबर को **'चार अनुयोग : एक अनुशीलन'** विषय पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया।

इस गोष्ठी की अध्यक्षता डॉ. दीपकजी जैन जयपुर ने की।

श्रेष्ठ वक्ता के रूप में ज्ञायक जैन (उपाध्याय वरिष्ठ) एवं शुभम हातगिणे (शास्त्री तृतीय वर्ष) रहे। मंगलाचरण श्रेंकी जैन (उपाध्याय कनिष्ठ) ने किया।

गोष्ठी का संचालन अक्षय अन्नदाते एवं योगेश जैन (शास्त्री तृतीय वर्ष) ने किया।

दिनांक 5 अक्टूबर को **'समवाय : एक अनुशीलन'** विषय पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया।

इस गोष्ठी की अध्यक्षता पण्डित राजेशजी शास्त्री शाहगढ ने की।

श्रेष्ठ वक्ता के रूप में मनीष जैन (शास्त्री द्वितीय वर्ष) एवं पवन जैन (शास्त्री तृतीय वर्ष) रहे। मंगलाचरण रजत जैन (उपाध्याय कनिष्ठ) ने किया।

गोष्ठी का संचालन शुभम मोदी एवं शैलेष घोडके (शास्त्री तृतीय वर्ष) ने किया।

दिनांक 12 अक्टूबर को **'पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएं'** विषय पर उपाध्याय वर्ग हेतु एक गोष्ठी का आयोजन किया गया।

इस गोष्ठी की अध्यक्षता पण्डित परेशजी शास्त्री जयपुर ने की। मुख्य अतिथि के रूप में श्री प्रेमचंदजी बजाज कोटा उपस्थित थे।

श्रेष्ठ वक्ता के रूप में रजत जैन (उपाध्याय कनिष्ठ) एवं प्रांजल जैन (उपाध्याय कनिष्ठ) रहे। मंगलाचरण लक्षित जैन (उपाध्याय कनिष्ठ) ने किया। गोष्ठी का संचालन प्रशांत जैन एवं पवन जैन (शास्त्री तृतीय वर्ष) ने किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो – वीडियो, प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें–
वेबसाइट – www.vitragvani.com
संपर्क सूत्र–श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
Ph. : 022-26130820, 26104912, E-Mail - info@vitragvani.com

दृष्टि का विषय

6 द्वितीय प्रवचन –डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे...)

सातवीं गाथा में तो साफ-साफ कहा है कि आत्मा ज्ञान नहीं है, दर्शन नहीं है और चारित्र भी नहीं है; वह तो मात्र ज्ञायक ही है।

सातवीं गाथा मूलत: इसप्रकार है –

ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।
ण वि णाणं ण चरितं ण दंसणं जाणगो सुद्धो।।७।।

(हरिगीत)

दृग ज्ञान चारित जीव के हैं – यह कहा व्यवहार से।
ना ज्ञान दर्शन चरण ज्ञायक शुद्ध हैं परमार्थ से।।

ज्ञानी (आत्मा) के ज्ञान, दर्शन और चारित्र – ये तीन भाव व्यवहार से कहे जाते हैं; निश्चय से ज्ञान नहीं है, दर्शन नहीं और चारित्र भी नहीं है; ज्ञानी (आत्मा) तो एक शुद्ध ज्ञायक ही है।

यहाँ कोई ऐसा भी प्रश्न कर सकता है कि यहाँ तो आप कह रहे हो कि आत्मा ज्ञान नहीं है; जबकि हमने तो वह कलश भी पढ़ा है, जिसमें यह कहा है कि आत्मा ज्ञान ही है।

वह कलश इसप्रकार है –

(अनुष्टुप्)

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम्।
परभावस्य कर्त्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम्।। [१]

(सोरठा)

ज्ञानस्वभावी जीव, करे ज्ञान से भिन्न क्या ?
कर्ता पर का जीव, जगतजनों का मोह यह।।६२।।

आत्मा ज्ञानस्वरूप है, स्वयं ज्ञान ही है; अत: वह जानने के अतिरिक्त और क्या करे ? अर्थात् वह मात्र जाननेवाला ही है। आत्मा परभावों का कर्त्ता है – ऐसा मानना व्यवहारी जनों का मोह है, अज्ञान है अर्थात् व्यवहारीजन मोह से ऐसा कहते हैं।

इसमें तो यही लिखा है कि आत्मा ज्ञान है और स्वयं ज्ञान है। 'स्वयं ज्ञान है' से तात्पर्य यह है कि ज्ञान गुण के संयोग से आत्मा 'ज्ञान' नहीं है। जैसा कि नैयायिक मानते हैं कि ज्ञान गुण अलग है और आत्मा अलग है और ज्ञान गुण के संयोग के कारण आत्मा ज्ञान है अर्थात् ज्ञानी है। ऐसे नैयायिकों की भाँति आत्मा ज्ञानगुणवाला नहीं है, अपितु वह तो स्वयं ज्ञान है, ज्ञानस्वरूप है।

अरे भाई ! इन दोनों कथनों की अलग-अलग अपेक्षायें हैं और उन्हीं अपेक्षाओं की बात यहाँ कह रहे हैं।

इस बात को ध्यान में रखना बहुत ही जरूरी है कि पर्याय को दृष्टि के विषय में से निकाला, वस्तु में से नहीं; तथा गौण के अर्थ में ही पर्याय के अभाव की बात कही है, सर्वथा अभाव के अर्थ में नहीं।

छठवीं गाथा में 'पर्याय से पार' की बात कही गई है और सातवीं गाथा में गुण-भेद से भिन्नता की बात कही गई। यदि दोनों को एक शब्द से कहना हो तो कैसे कहेंगे ?

'गुणपर्याय से पार' – ऐसा तो कहेंगे नहीं। नय तो द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ये ही दो हैं, 'गुणार्थिक' नाम का नय तो है ही नहीं।

जिसप्रकार छठवीं गाथा में पर्याय से पार, बताया गया है; उसीप्रकार सातवीं गाथा में भी 'गुणभेद से भिन्न' कहकर पर्याय से भी पार बताया है, **गुण से भिन्न नहीं बताया है; क्योंकि गुणभेद का नाम भी तो पर्याय ही है।** पूर्व में पर्याय की जो परिभाषा बताई थी कि जो पर्यायार्थिकनय का विषय है, वह पर्याय है और गुणभेद पर्यायार्थिकनय का विषय है, न कि द्रव्यार्थिकनय का; इसलिए **गुणभेद भी पर्याय ही है।**

हमें यह बहुत अटपटा लगता है कि गुणों को तो दृष्टि के विषय में शामिल कर लिया और गुणभेद को पर्याय में शामिल करके पर्याय कहकर निषेध कर दिया।

इसमें अटपटा लगने लायक कुछ भी नहीं है; क्योंकि हम बाजार से पूरा आम खरीद कर लाते हैं। पच्चीस रुपये के किलो के हिसाब से उसके पूरे पैसे भी दे देते हैं। गुठली और छिलका भी आम के भाव तुलकर आया था; रस तो सभी पी लेते हैं; लेकिन छिलके और गुठली को फेंक दिया जाता है।

उसीप्रकार यहाँ भी प्रयोजन की दृष्टि से गुण और गुणभेद इन दोनों को अलग-अलग पक्ष में खड़ा कर दिया, **एक का तो दृष्टि के विषय में शामिल कर लिया और एक को दृष्टि के विषय में से निकाल दिया। यह सब नयदृष्टि का ही कमाल है।**

इसलिए दोनों नयों के सम्यक् प्रयोग के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। **द्रव्यार्थिकनय का विषय ही दृष्टि का विषय है। अत: दृष्टि के विषय को समझने के लिए द्रव्यार्थिकनय के स्वरूप को, उसके विषय को अच्छी तरह समझना ही होगा।**

अखण्डरूप से असंख्यात प्रदेश अर्थात् असंख्यातप्रदेशी अखण्ड आत्मा तो दृष्टि का विषय है ही; किन्तु पृथक्-पृथक् असंख्य प्रदेश दृष्टि के विषय में शामिल नहीं हैं। **प्रदेश इसलिए दृष्टि के विषय से बाहर हुए; क्योंकि उन्हें असंख्य कहकर भेद खड़ा कर दिया गया है।**

गुणों के तो अलग-अलग नाम हैं, हर गुण का स्वरूप भी अलग-अलग है; लेकिन प्रदेशों के तो कोई नाम ही नहीं है। नाम तो भिन्नता बताने के लिए रखा जाता है और प्रदेशों

१. समयसार, कलश ६२

में कोई स्वरूप भिन्नता है ही नहीं, तथापि असंख्य असंख्य कहकर उनमें जो भेद उत्पन्न किया गया; उसके ही कारण प्रदेशभेद को दृष्टि के विषय में शामिल नहीं किया गया।

गुणों का तो स्वरूप ही भिन्न-भिन्न है। ज्ञान गुण का स्वरूप जानना है, दर्शन का स्वरूप देखना है, श्रद्धागुण का स्वरूप अपनापन स्थापित करनेरूप है, सुख का स्वरूप आनन्दरूप है। इन गुणों का स्वरूप अलग-अलग होने से इनके ये नाम रख दिये गए।

जब हम किसी गुण का नाम लेते हैं तो नाम लेते ही गुण का भेद खड़ा हो जाता है। अरे भाई ! आत्मा ऐसे ही अनन्त गुणों का अखण्ड अभेद एक पिण्ड है। **अकेला ज्ञानगुण आत्मा नहीं है।**

पूज्य गुरुदेवश्री भी इसको बहुत अच्छी तरह स्पष्ट करते थे कि किसी ने उनसे यह प्रश्न किया कि जब ज्ञान, आत्मा का लक्षण है, ज्ञान से आत्मा की पहिचान होती है; तो आत्मा को ज्ञान क्यों नहीं कह सकते ? तो उन्होंने कहा कि **अकेले ज्ञान को ही आत्मा कहने से आत्मा के अनन्त गुणों की उपेक्षा होती है, ज्ञान, कहने से पूरा आत्मा ख्याल में नहीं आता है।**

यदि किसी ने ज्ञान को ही आत्मा समझ कर मात्र ज्ञान में ही अपनापन स्थापित किया और सुख आदि गुणों में भी अपनापन स्थापित नहीं किया, तो उसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होगी।

सुख के संबंध में ऐसा होता है कि बहुत से माँ-बाप अपने बेटों को और गुरु अपने शिष्यों को समझाते हैं कि बेटा ! अभी थोड़ी तकलीफ भोग लोगे तो भविष्य में बहुत आराम पाओगे और यदि अभी आराम भोगोगे तो भविष्य में दु:ख पाओगे। यही उम्र तुम्हारी काम करने की है। यदि अभी ९ बजे तक सोते रहोगे और आराम-मस्ती करते रहोगे तो सारी जिन्दगी चपरासी ही बने रहोगे; लेकिन यदि अभी रात के दो-दो बजे तक जाग लिया और ढंग से पढ़ाई कर ली तो सैंकड़ों चपरासी तुम्हारे सामने सेवा में खड़े रहेंगे।

ऐसा ही नीतिकारों ने भी लिखा है –

''सुखार्थिनो कुतो विद्या, विद्यार्थिनो कुत: सुखम्।''

सुख के चाहनेवाले को विद्या कहाँ से प्राप्त होगी और विद्यार्थी को सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ?

पर; मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या यह ठीक है कि दु:ख का बीज बोओगे तो सुख का वृक्ष उगेगा या अभी सुख भोगोगे तो भविष्य में दु:ख होगा ? जैनधर्म तो यह कहता है कि अभी तुम सुखी होगे तो भविष्य में भी सुखी होगे।

सारा जगत तो सुख का अर्थ यह समझता है कि नौ बजे तक सोना सुख है और पाँच बजे सुबह उठना दु:ख है। इसी को आधार बनाकर यह कहते हैं कि अभी वर्तमान में दु:ख भोग लो तो भविष्य में सुखी रहोगे।

मैं पूछता हूँ कि जो शिविरों में पाँच बजे प्रवचनों के लिए उठ जाते हैं और सुबह पाँच बजे जो भगवान का नाम लेते हैं, भक्ति करते हैं, शास्त्र पढ़ते हैं; वे सुखी हैं या दु:खी ?

बुधजनजी ने छहढाला में लिखा है –

''दु:ख तैं सुख, सुख तैं दु:ख होय। समता चारों गति नहिं जोय।।''

कुछ लोग इसका अर्थ ऐसा करते हैं कि 'दु:ख से सुख होता है और सुख से दु:ख होता है।' पर मेरा कहना है कि –

यहाँ 'तैं' का अर्थ यह नहीं है। तैं यह 'ढूँढारी' भाषा का शब्द है। पद्मपुराण में आता है कि 'दशरथ तैं राम, राम तैं लवकुश।'

यद्यपि कारण-कार्य संबंध के लिए भी 'तैं' शब्द का प्रयोग होता है; लेकिन यहाँ कारण-कार्य संबंध के अर्थ में 'तैं' का प्रयोग नहीं है।

यह तो संसार भावना है और इसमें यह कहा गया है कि जो जीव आज दु:खी हैं, वे कल सुखी हो सकते हैं और जो आज सुखी हैं, वे कल दु:खी हो सकते हैं; सांसारिक सुख-दु:ख तो इस संसार में लगा ही रहता है, अच्छे-बुरे दिन तो सभी के आते-जाते रहते हैं।

आज के जो रोड़पति हैं, वे कल करोड़पति हो सकते हैं और आज जो करोड़पति हैं, वे कल रोड़पति हो सकते हैं और जो आज स्वस्थ हैं, वे कल बीमार हो सकते हैं तथा आज जो बीमार हैं, वे कल स्वस्थ हो सकते हैं। तात्पर्य यह है कि **यह वर्तमान पर्याय स्थिर नहीं है, बदलती रहती है।**

यहाँ कारण-कार्य संबंध के रूप में इसका अर्थ हो ही नहीं सकता है। क्या कभी ऐसा हो सकता है कि बबूल का बीज बोओ और आम का पेड़ उग जाय या आम का बीज बोओ और बबूल का पेड़ उग जाय? यदि यह सत्य है तो फिर सुख से दु:ख और दु:ख से सुख, ये अर्थ कैसे संभव है ? लेकिन बाप-दादाओं की परंपरा ऐसी ही चली आ रही है और वे कहते आ रहे हैं कि अभी दु:ख भोगेंगे तो बाद में सुखी रहेंगे और अभी सुख भोगेंगे तो बाद में दु:खी हो जायेंगे।

यदि इस छन्द का ऐसा अर्थ हो तो क्या अरहंत भगवान और सिद्ध भगवान जो अभी सुख भोग रहे हैं, वे भविष्य में दु:खी हो जायेंगे ? और जो नारकी अभी दु:खी भोग रहे हैं, वे इसके कारण भविष्य में सुखी हो जायेंगे ? अरे भाई ! कारण-कार्य संबंध वाला अर्थ यहाँ कदापि नहीं है।

इसप्रकार सुख के संबंध में जगत में ऐसी गलत मान्यता है, लेकिन आत्मा में जो सुख गुण है, वह अनन्त आनन्दस्वरूप है। इसी सुख गुण की तरह आत्मा में अनन्त गुण हैं; इसलिए मात्र ज्ञानगुण आत्मा के समग्र स्वरूप को बताने में समर्थ नहीं है। आत्मा को ज्ञानमात्र कहने से आत्मा के अनन्त गुणों की उपेक्षा होती है।

(क्रमश:)

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के संबंध में उनके समकालीन मनीषियों द्वारा व्यक्त किये गये हृदयोद्गार -

पण्डित बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता, फतेपुर, अध्यक्ष, श्री कुन्दकुन्द कहान दिग. जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट लिखते हैं -

वे विश्व की आध्यात्मिक विभूति, बालब्रह्मचारी, आत्मार्थी सत्पुरुष, अविरत सम्यग्दृष्टि, सकल निरावरण परम पारिणामिक भावस्वरूप निज परमात्मद्रव्य के अनन्य उपासक, ज्ञायकस्वभाव की धुन के धनी, अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व के धनी, जिनवाणी के सातिशय प्रवक्ता एवं निर्ग्रन्थ दिगम्बर मार्ग के प्रबल प्रचारक थे। मैं उन्हें कोटि-कोटि वन्दन करता हूँ।

स्वामीजी ने इस निकृष्ट पंचमकाल में हम सबको परमोत्कृष्ट निजात्मतत्त्व बताया है। उन्होंने जिनागम के अन्तस्तल में डुबकियाँ लगाकर अनेकान्त, स्याद्वाद, निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान, क्रमबद्धपर्याय आदि अनेक रत्न निकालकर हमें दिये हैं। उनकी वाणी में द्रव्य-गुण-पर्याय की स्वतंत्रता का सिंहनाद हुआ है। उन्होंने तत्त्वप्रचार के सशक्त माध्यम के रूप में शिक्षण तथा प्रशिक्षण शिविर-प्रणाली का आविष्कार किया। मोक्षमार्ग का सफल नेतृत्व करने वाले इस युगपुरुष को मैं अगणित वन्दन करता हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री ने हमें आत्मा के अस्तित्व का भान कराया है। सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग की प्रथम सीढी है, उसके बिना धर्म नहीं होता, शुभाशुभभाव में धर्म नहीं है, प्रत्येक आत्मा द्रव्यस्वभाव से भगवान है तथा स्वयं पुरुषार्थ करके पर्याय में भगवान बन सकता है - इत्यादि अनेक सिद्धांतों का प्रतिपादन करके उन्होंने हम पर अनन्त उपकार किए हैं।

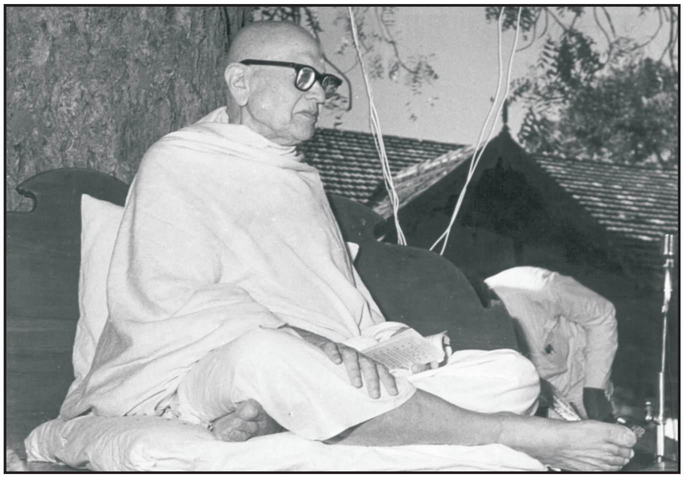

संपादक संघ का अधिवेशन सूरत में

अखिल भारतीय जैन पत्र संपादक संघ का दो दिवसीय राष्ट्रीय अधिवेशन सूरत (गुज.) में दिनांक 22 व 23 नवम्बर को संपन्न होगा।

इस अवसर पर 22 नवम्बर को रात्रि में अध्यक्ष का चुनाव प्रस्तावित है। कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. चिरंजीलाल बगड़ा करेंगे। सभी सदस्यों की उपस्थिति प्रार्थनीय है। **- अखिल बंसल**

शोक समाचार

नागपुर (महा.) निवासी श्री कोमलचंदजी जैन का 85 वर्ष की आयु में दिनांक 26 अक्टूबर को शांतपरिणामोंपूर्वक देहविलय हो गया।

आप अत्यंत स्वाध्यायी थे। छ: दिन पूर्व ही नागपुर महाविद्यालय के समाधि कक्ष में चार दिनों तक ब्र.वासन्ती बेन व ब्र. प्रतीति बेन द्वारा समाधि विषय पर प्रवचनों का लाभ लिया एवं समाधिमरण की भावना भायी।

ज्ञातव्य है कि आप टोडरमल महाविद्यालय के प्रथम बैच के स्नातक डॉ. राकेशजी शास्त्री नागपुर के पिताजी थे।

दिवंगत आत्मा चतुर्गति के दु:खों से छूटकर शीघ्र ही अनंत अतीन्द्रिय आनंद को प्राप्त हो - यही मंगल भावना है।

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

30 अक्टू. से 6 नव.2014	जयपुर (राज.)	सिद्धचक्र विधान
1 से 7 जनवरी 2015	नागपुर (महा.)	पंचकल्याणक
15 फरवरी 2015	हस्तिनापुर	शिलान्यास
20 से 22 फरवरी 2015	जयपुर (राज.)	वार्षिकोत्सव
1 से 6 अप्रैल 2015	विदिशा (म.प्र.)	पंचकल्याणक

प्रकाशन तिथि : 28 अक्टूबर 2014

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
सह-सम्पादक : **डॉ.संजीवकुमार गोधा**, एम.ए.द्वय, नेट, एम.फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी. एवं **पण्डित परमात्मप्रकाश भारिल्ल**
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
E-Mail : ptstjaipur@yahoo.com **फैक्स :** (0141) 2704127